

अकलंकदेव कृत आप्तमीमांसाभाष्य एवं सविवृति लघीयस्त्रय के उद्धरणों का अध्ययन

कमलेश कुमार जैन

पुरातन निर्ग्रन्थ परम्परा, जिसे आज हम जैन परम्परा के रूप में जानते हैं, का साहित्य सघन एवं गम्भीर है। जैन मनीषियों एवं लेखकों ने ज्ञानविज्ञान की सभी विद्याओं पर गहन एवं तलस्पर्शी चिंतन किया है। इस कारण जैन परम्परा में भी बहुतायत में साहित्य रचना हुई है।

जैनाचार्यों ने प्राचीन आगम एवं आगमिक प्राकृत साहित्य, मध्यकालीन प्राकृत और संस्कृत साहित्य, अपभ्रंश साहित्य तथा व्याख्या-निर्युक्ति, भाष्य, चूर्ण, टीका आदि-साहित्य में अपने मूल सिद्धान्तों की प्रस्तुति, सिद्धान्तों की व्याख्या एवं अन्य मौलिक रचनाएँ लिखते समय अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए, प्रमाणित या पुष्ट करने के लिए अथवा उस पर अधिक जोर देने के लिए अन्य परम्पराओं-जैनेतर परम्पराओं-में स्वीकृत सिद्धान्तों, सिद्धान्तगत दार्शनिक मन्तव्यों की समीक्षा, आलोचना अथवा निराकरण करने में प्रचुरमात्रा में अवतरण / उद्धरण उद्धृत किये हैं।

इन उद्धरणों में बहुसंख्या में ऐसे उद्धरण मिलते हैं, जिनके मूल स्रोत ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। बहुत से ऐसे उद्धरण प्राप्त होते हैं, जो मुद्रित ग्रन्थों में उसी रूप में नहीं मिलते, उनमें पाठान्तर दिखाई देते हैं। कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनका उपलब्ध ग्रन्थ में अस्तित्व ही नहीं है।

उपर्युक्त उद्धरणों में मुख्य रूप से वैदिक साहित्य, प्राचीन जैन आगम एवं आगमिक साहित्य, बौद्ध साहित्य तथा षड्दर्शनों से सम्बद्ध साहित्य के उद्धरण मिलते हैं। इसके साथ-साथ लौकिक, नीतिपरक तथा साहित्यिक प्राप्त-अप्राप्त ग्रन्थों से भी उद्धरण पाये जाते हैं।

उपर्युक्त जैन साहित्य गीतार्थ (आगम विद्) आचार्यों द्वारा लिखा गया है या संकलित है। चूँकि आचार्यों द्वारा उद्धृत या अवतरित उद्धरण उस-उस समय में प्राप्त ग्रन्थों से लिये गए हैं, इसलिए इन उद्धरणों की प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध है। इन आचार्यों के द्वारा लिखित ग्रन्थों में प्राप्त उद्धरणों के आधार पर वर्तमान में उपलब्ध ग्रन्थों से उनकी तुलना एवं समीक्षा की जाये तो उनमें तदनुसार संशोधन / परिवर्तन भी किया जा सकता है।

ऐसे ग्रन्थ या ग्रन्थकर्ता, जिनके नाम से उद्धरण तो मिलते हैं, परन्तु उस ग्रन्थ या ग्रन्थकार की जानकारी अभी तक अनुपलब्ध है, ऐसे उद्धरणों का संकलन तथा उनका विशिष्ट अध्ययन महत्वपूर्ण निष्कर्ष दे सकता है। इससे ग्रन्थकारों का समय तय करने में बहुत सहायता मिल सकती है। साथ ही लुप्त कडियों को प्रकाश में लाया जा सकता है।

प्रस्तुत निबन्ध में आचार्य अकलंकदेव रचित आप्तमीमांसाभाष्य तथा सविवृति लघीयस्त्रय, इन दो ग्रन्थों के उद्धरणों का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास है।

अकलंकदेव (प्रायः ईस्वी ७२०-७८०) जैन परम्परा के एक प्रौढ विद्वान एवं उच्चकोटि के दार्शनिक ग्रन्थकार है। उनके साहित्य में तर्क की बहुलता और विचारों की प्रधानता है। अकलंक का लेखन-समय बौद्धयुग का मध्याह्न काल माना जाता है। उस समय दार्शनिक, धार्मिक, राजनैतिक और साहित्यिक क्षेत्र में बौद्धों का अधिक प्रभाव था। संभवतः इसी कारण अकलंक के साहित्य में बुद्ध और उनके मन्तव्यों की समीक्षा / आलोचना बहुलता से पायी जाती है।

अकलंकदेव ने स्वामी समन्तभद्र कृत देवागम / आप्तमीमांसा पर भाष्य लिखा है। इसे देवागम विवृति भी कहा गया है। आठ सौ श्लोक प्रमाण होने से इसे अष्टशती भी कहते हैं। इसके देवागमभाष्य और आप्तमीमांसाभाष्य नाम भी प्रसिद्ध हैं। यह भाष्य इतना जटिल एवं दुरूह है कि बिना अष्टसहस्री (विद्यानन्दिकृत व्याख्या) का सहारा लिए इसका अर्थ करना अत्यन्त कठिन है।

विवेच्य ग्रन्थ आप्तमीमांसाभाष्य एवं लघीयस्त्रय में भी बौद्ध साहित्य के ही अधिक उद्धरण मिलते हैं। इससे पता चलता है कि अकलंकदेव बौद्धों के मन्तव्यों / सिद्धान्तों के प्रबल विरोधी रहे, परन्तु यह विरोध किसी दुरग्रह के कारण नहीं रहा, अपितु सिद्धान्तभेद के कारण उन्होंने अपने साहित्य में बौद्धों की पग-पग पर समीक्षा / आलोचना की है।

१. आप्तमीमांसाभाष्य (अष्टशती)

अकलंकदेव ने आप्तमीमांसाभाष्य (अष्टशती) में कुल दश उद्धरण दिये हैं। कारिका २१ के भाष्य में “नोत्पत्त्यादिः क्रियाः, क्षणिकस्य तदसंभवात्। ततोऽसिद्धो हेतुः” : यह वाक्य उद्धृत किया है^१। इसका निर्देश स्थल नहीं मिल सका है।

कारिका २१ के ही भाष्य में “ततः सूक्तम्” करके निम्नलिखित वाक्य उद्धृत किया है^२-यदेकान्तेन सदसद्वा तन्नोत्पत्तुमर्हति, व्योमवन्ध्यासुतवत्”।

इसका स्रोत भी अभी ज्ञात नहीं हो सका है।

कारिका ५३ के भाष्य में अकलंक ने “न तस्य किञ्चिद् भवति न भवत्येव केवलम्” वाक्य उद्धृत किया है^३। यह वाक्य धर्मकीर्ति प्रणीत प्रमाणवार्तिक की कारिका का उत्तरार्ध भाग है। सम्पूर्ण कारिका इस प्रकार है^४।

न तस्य किञ्चिद् भवति न भवत्येव केवलम् ।

भावे ह्येष विकल्पः स्याद् विधेर्वस्त्वनुरोधतः ॥

कारिका ७६ में “युक्त्या यन्न घटमुपैति तदहं दृष्ट्वाऽपि न श्रद्धे” वाक्य उद्धृत किया है^५।

इसका मूल स्रोत ज्ञात नहीं हो सका है।

कारिका ८० की वृत्ति में “संहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्विद्योः वाक्य उद्धृत है। जो प्रमाणविनिश्चय से लिया गया है^६।

कारिका ८९ के भाष्य में “तदुक्तम्” करके निम्न कारिका उद्धृत की है^७।

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायाश्च तादृशः ।

सहायास्तादृशः सन्ति यादृशी भवितव्यता ॥

यह कारिका कहाँ से ग्रहण की गई है। इसका निर्देश-स्थल अभी ज्ञात नहीं हो सका है।

कारिका संख्या १०१ के भाष्य में “तथा चोक्तम्” करके “सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य”-^८ सूत्र उद्धृत किया गया है। एवं कारिका संख्या १०५ के भाष्य में “मति श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु”^९ यह सूत्र उद्धृत किया है।

यह दोनों सूत्र तत्त्वार्थसूत्र से लिये गये हैं।

कारिका १०६ के भाष्य में अकलंक ने निम्न वाक्य उद्धृत किया है^{१०}-

“नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते”

यह वाक्य **आप्तमीमांसा** की ही एक कारिका का पूर्वार्ध है^{३३} ।

कारिका १०६ के भाष्य में अकलंक ने ‘तथोक्तम्’ करके एक उद्धरण दिया है^{३४}—

“अर्थस्यानेकरूपस्य धीः प्रमाणं तदंशधीः ।

नयो धर्मान्तरापेक्षी दुर्णयस्तन्निराकृतिः ॥

इस कारिका का प्रथम चरण अकलंकदेव कृत **न्यायविनिश्चय** की कारिका संख्या २९९ से ज्यों का त्यों मिलता है । परन्तु शेष भाग नहीं मिलता । **न्यायविनिश्चय** की कारिका इस प्रकार है^{३५} ।

अर्थस्यानेकरूपस्य कदाचित्कस्यचित्कचित् ।

शक्तावतिशयाधानमपेक्षातः प्रकल्प्यते ॥

यह भी संभव है कि अकलंक की इन दोनों कारिकाओं का निर्देश स्थल या आधार कोई अन्य ग्रन्थ हो, और उसी के अनुसार अकलंक ने **न्यायविनिश्चय** की कारिका का संगठन किया हो । किसी सबल प्रमाण के बिना निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन है ।

२. सविवृति लघीयस्त्रय

लघीयस्त्रय में अकलंकदेव ने कुल आठ (८) उद्धरणों का प्रयोग किया है^{३६} । कारिका संख्या ३ (तीन) की विवृति में अकलंकदेव ने “अपर” शब्द के द्वारा किसी वादी के मत का उल्लेख किया है । वे लिखते हैं—“नहि तत्त्वज्ञानमित्येव यथार्थनिर्णयसाधनम् इत्यपरः”^{३७} । इस कथन को व्याख्याकार प्रभाचन्द्राचार्यने दिङ्नाग का मत बतलाया है । इस विवृति का व्याख्यान करते हुए प्रभाचन्द्र ने लिखा है^{३८}—
हि यस्मात् न तत्त्वस्य परमार्थस्य ज्ञानमित्येव यथार्थनिर्णयसाधनम् अपितु किञ्चिदेव, तदैव च प्रमाणम् । तदुक्तम् - “यत्रैव जनयेदेनां” तत्रैवास्य प्रमाणता” इत्यपरः- दिङ्नागादिः ।

परन्तु **सिद्धिविनिश्चय** के टीकाकार ने इसे धर्मोत्तर का मत बतलाया है । वे लिखते हैं^{३९-४०} -“अत्र अपरः सौगतः प्राह-“यत्रैव जनयेदेनां तत्रैवास्य प्रमाणता” इति धर्मोत्तरस्य मतमेतत् ।” अन्य अनेक आचार्यों का भी यही कथन है^{४१-४२} ।

कारिका संख्या आ. (८) की विवृति में अकलंक ने “अर्थक्रियासमर्थ परमार्थसत् इत्यङ्गीकृत्य” इस वाक्यांश का उल्लेख किया है^{४३} । यह वाक्यांश **प्रमाणवार्तिक** की कारिका का अंश है । **प्रमाणवार्तिक** में पूरी कारिका इस प्रकार पायी जाती है^{४४} -

अर्थक्रियासमर्थं यत्तदत्र परमार्थसत् ।

अन्यत्संवृतिस्तत् प्रोक्तम् ते स्वसामान्यलक्षणे ॥

बारहवीं कारिका की विवृति में “तत्राप्रत्यक्षव्यतिरिक्तं प्रमाणम्” वाक्य उद्धृत किया है^{४५} । यह किसी बौद्धाचार्य का मत है । यही वाक्य अकलंक ने अपने एक अन्य ग्रन्थ **प्रमाणसंग्रह** की कारिका १९ की विवृति में भी “अयुक्तम्” करके उद्धृत किया है^{४६} । वहाँ पर “प्रमाणम्” के स्थान पर “मानम्” पाठ मिलता है ।

तेइसवीं कारिका की विवृति “सर्वतः संहृत्य चिन्तां स्तिमितान्तरात्मना स्थितोऽपि चक्षुषां रूपं”^{४७} इत्यादि वाक्य से प्रारम्भ होती है । यह वाक्य भी **प्रमाणवार्तिक** की कारिका का अविकल रूप है । कारिका

इस प्रकार है^{२५} -

संहृत्य सर्वतश्चिन्तां स्तिमितेनान्तरात्मना ।
स्थितोऽपि चक्षुषा रूपमीक्षते साक्षजा मतिः ॥

२८ वीं कारिका की विवृति में अकलंकदेव ने “वक्तुरभिप्रेतं वाचः सूचयन्ति अविशेषेण नार्थतत्त्वमपि” - वाक्य उद्धृत किया है^{२६} । इसका ठीक ठीक स्रोत तो नहीं मिलता, परन्तु प्रमाणवार्तिक (१/६७, पृ. ३०) उसकी मनोरथ नन्दिनी टीका (पृ. ३०) एवं मोक्षाकरगुप्तकृत तर्कभाषा (पृ. ४) आदि में उक्त उद्धरण का भाव अवश्य मिलता है^{२७} ।

कारिका संख्या ४१ की विवृति में “गुणानां परमं रूपं” - इत्यादि^{२८} कारिका उद्धृत की गई है । शांकरभाष्य पर भामती टीका का कर्ता वाचस्पति मिश्र ने इसे वार्षगण्य कृत बताया है - अतएव योगशास्त्रं व्युत्पादयितुमाह स्म भगवान् वार्षगण्य :-

गुणानां परमं रूपं— । योगसूत्र की तत्त्ववैशारदी^{२९} एवं योगसूत्र की भास्वती, पातंजलरहस्य^{३०} में इसे “षष्टितन्त्र शास्त्र की कारिका बताया है । जैसे-

षष्टितन्त्रशास्त्रस्यानुशिष्टि :-

गुणानां परमं—इत्यादि ।

और योगभाष्य में इस कारिका को उद्धृत करते कहा गया है-तथा च शास्त्रानुशासनम्-

गुणानां परमं रूपं—^{३१} ।

कारिका ४४ की विवृति में ‘नहि बुद्धेरकारणं विषयः यह वाक्य उद्धृत है^{३२} । इसका मूल स्थान अभी मिल नहीं सका है ।

कारिका ५४ की विवृति में अकलंक ने “ततः सुभाषितम्” करके “इन्द्रियमनसी कारणं विज्ञानस्य अर्थो विषयः” यह वाक्य उद्धृत किया है^{३३} । यह किस शास्त्र का वाक्य है, इसका पता नहीं चलता ।

उक्त वाक्य वादिगजसूरिकृत न्यायविनिश्चयविवरण में भी उद्धृत है —

“इन्द्रियमनसी विज्ञानकारणमिति वचनात् ।” तथा विद्यानंद ने भी अपने श्लोकवार्तिक में अकलंक के सन्दर्भ सहित इसे उद्धृत किया है^{३४} -

“तस्मादिन्द्रियमनसी विज्ञानस्य कारणं
नार्थोऽपीत्यकलंकैरपि—” ।

सत्तावनवीं कारिका की विवृति में “नाननुकृतान्वयव्यतिरेकं कारणं नाकारणं विषयः” वाक्य को उद्धृत करते हुए अकलंक ने इसे वालिशगीत कहा है^{३५} । यह वाक्य अन्य बहुत से ग्रन्थों में भी उद्धृत मिलता है^{३६} ।

५४ वीं कारिका की विवृति में “तिमिराशुभ्रमणनौयानसंक्षोभादि” वाक्यांश ग्रहण किया गया है^{३७} । यह अंश धर्मकीर्ति कृत न्यायबिन्दुप्रकरण की आर्यविनीतदेवकृत न्यायबिन्दुविस्तरटीका का है । मूल वाक्य इस प्रकार है^{३८} -

तिमिराशुभ्रमण-नौयान-संक्षोभाद्यना-हितविभ्रममिति ।

कारिका ६५ के उत्तरार्ध रूप में एक वाक्य “वक्त्रभिप्रेतमात्रस्य सूचकं वचनं त्विति” उद्धृत किया है। जिसे मूल कारिका का अंश बना लिया गया है।

इसके मूल स्रोत की जानकारी नहीं मिल सकी है।

कारिका ६६-६७ की विवृति के अन्त में लघीयस्त्रय में “ततः तीर्थकरवचनसंग्रहविशेषप्रस्तार-मूलव्याकारिणौ द्रव्याधिकपर्यायार्थिकौ” आदि वाक्य आया है^{१०}।

यह वाक्य आचार्य सिद्धसेनकृत सन्मतिप्रकरण की तीसरी गाथा की संस्कृत छाया है। सन्मतिप्रकरण की मूल गाथा निम्न प्रकार है -

तित्थयरवयणसंग्रहविसेसपत्थारमूलवागरणी । दव्वदिठओ य पज्जवणओ य सेसा वियप्पासि^{११} ।

आप्तमीमांसाभाष्य में अकलंक ने उमास्वाति, समन्तभद्र, धर्मकीर्ति, आर्यविनीतदेव आदि आचार्यों के ग्रन्थों से वाक्य, वाक्यांश या उद्धरण लिये हैं। इसी तरह लघीयस्त्रय मूल एवं विवृति में वार्षगण्य, सिद्धसेन, दिङ्नाग, धर्मकीर्ति और धर्मोत्तर, आदि आचार्यों के ग्रन्थों से वाक्य या वाक्यांश उद्धृत किये गये हैं।

अकलंक की उपर्युक्त दोनों कृतियों में मूलतः दार्शनिक विषयों का विवेचन है। अतः यह स्वाभाविक है कि उनमें दार्शनिक ग्रन्थों के ही उद्धरण या वाक्यांश मिलें। इसीलिए प्रायः सभी उद्धरण दार्शनिक / तार्किक ग्रन्थों से लिये गये मिलते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि अकलंकदेव ने अपने समय के अथवा अपने समय से पूर्व के प्रसिद्ध तार्किकों / लेखकों के मत की आलोचना / समीक्षा की है और उसके लिए इनके मूल ग्रन्थों से ही बहुत से अवतरण / उद्धरण दिये हैं।

अकलंक के आप्तमीमांसाभाष्य एवं सविवृतिलघीयस्त्रय में कुछ ऐसे वाक्य या वाक्यांश पाये जाते हैं, जो दूसरे-दूसरे ग्रन्थों से लिए गये हैं। उनमें कुछ अंश तो ऐसे हैं, जो उद्धरण या अवतरण के रूप में लिये गये हैं, किन्तु कुछ अंश भाष्य या कारिका अथवा विवृति के ही अंग बन गये हैं अतएव भाष्य या विवृतिकार द्वारा ही रचित लगते हैं।

अकलंककृत आप्तमीमांसाभाष्य एवं विवृतिसहित लघीयस्त्रय में दूसरे ग्रन्थों के जो पद्य या वाक्य उद्धृत हैं, उनके निर्देश-स्थल को खोजने की यथासम्भव कोशिश की गयी है। बहुत से उद्धरणों का निर्देश स्थल अभी मिल नहीं सका है, उन्हें खोजने की कोशिश जारी है।

यह भी प्रयास है कि इस प्रकार के तथा अन्य उद्धृत पद्य का वाक्य जिन-जिन ग्रन्थों में उद्धृत हैं, उनको भी संकलित कर लिया जाये। इससे ग्रन्थकारों का समय तय करने में बहुत सहायता मिल सकती है और लुप्त कड़ियों को एकत्रित किया जा सकता है और उन्हें संजोकर प्रकाश में लाया जा सकता है।

सन्दर्भ एवं सहायक ग्रन्थ-सूची :

१. आप्तमीमांसाभाष्यम्-अष्टशती, अकलंकदेव, संकलन-डॉ. गोकुल चन्द्र जैन, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट, वाराणसी १९८९.
२. वही, कारिका २१ भाष्य.
३. वही, कारिका २१ भाष्य.
४. वही, कारिका ५३ भाष्य.
५. प्रमाणवार्तिकम् सटीकम्-धर्मकीर्ति, सम्पादक-द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारती, वाराणसी १९६८.
६. आप्तमीमांसाभाष्य, कारिका ७६.
७. वही, कारिका ८०.
८. न्यायकुमुदचन्द्र भाग १, 'प्रस्तावना' पृष्ठ ४६, सम्पादक-पं. महेन्द्रकुमार शास्त्री । श्री सत्गुरु प्रकाशन, दिल्ली १९९१.
९. आप्तमीमांसाभाष्य कारिका ८९.
१०. तत्त्वार्थसूत्र १/२९, तत्त्वार्थवार्तिक भाग १ के अन्तर्गत, सम्पादक : महेन्द्रकुमार शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी १९८९.
११. वही १/२६.
१२. आप्तमीमांसाभाष्य कारिका १०६.
१३. वही, कारिका ३७.
१४. वही, कारिका १०६.
१५. न्यायविनिश्चयः, सम्पादक-महेन्द्रकुमार शास्त्री, (अकलंकग्रन्थत्रयान्तर्गत) सिंधी ग्रन्थमाला, मुंबई १९३९, कारिका २९९, पृष्ठ ७०.
१६. लघीयस्त्रय (स्वोपज्ञविवृति सहित) अकलंकग्रन्थत्रयान्तर्गत, सिंधी ग्रन्थमाला, मुंबई १९३९.
१७. वही, कारिका विवृति ३.
१८. न्यायकुमुदचन्द्र १/३ पृष्ठ ६६.
- १९-अ. सिद्धिविनिश्चय, पृष्ठ ९१ ३०.
- १९-ब. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ. १७७, २००, ३१९, प्रमेयकमलमार्तण्ड पृ. १०३०, सन्मति तर्क टीका पृ. ५१२, स्याद्वाद-रत्नाकर पृष्ठ ८६, शास्त्रवार्तासमुच्चय-टीका पृष्ठ १५१ ३० पर भी यही कथन मिलता है । परन्तु न्यायावतार के टीकाकार ने इसे निम्न रूप में उद्धृत किया है- "यत्रैवांशे विकल्पं जनयति तत्रैवास्य प्रमाणता इति वचनात् ।" न्यायावतारटीका पृष्ठ-३१, द्रष्टव्य-न्यायकुमुदचन्द्र भाग-१, पृष्ठ ६६ टिप्पणी संख्या ११.
२०. लघीयस्त्रय, कारिका ८ विवृति.
२१. प्रमाणवार्तिक २/३, पृष्ठ १००.
२२. लघीयस्त्रय, कारिका १२ विवृति.
२३. अयुक्तम्-"नाऽर्थप्रत्यक्षमनुमानव्यतिरिक्तं मानम्"-प्रमाणसंग्रह (अकलंकग्रन्थत्रयान्तर्गत) सिंधी ग्रन्थमाला, १९३९ ईस्वी, कारिका १९, पृष्ठ १०१.
२४. लघीयस्त्रय, कारिका २३.
२५. प्रमाणवार्तिक २/१२४.
२६. लघीयस्त्रय, कारिका २८.
२७. न्यायकुमुदचन्द्र भाग-२, पृष्ठ ६००-६०१, टिप्पण ६, श्री सत्गुरु प्रकाशन, दिल्ली, १९९१ ईस्वी.
२८. लघीयस्त्रय, कारिका ४१ विवृति.
२९. शांकरभाष्य, भामती पृ. ३५२.

३०. योगसूत्र तत्त्ववैशारदी ४/१३.
३१. योगसूत्र भास्वती, पातंजल रहस्य ४/१३.
३२. योगभाष्य ४/१३, द्रष्टव्य न्यायकुमुदचन्द्र भाग-२, पृष्ठ ६२८ टिप्पण.
३३. लघीयस्त्रय, कारिका ४४.
३४. वही, कारिका ५४.
३५. न्यायविनिश्चय विवरण पृ. ३२ ए, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, पृ. ३३०, द्रष्टव्य न्यायकुमुदचन्द्र भाग-२ टिप्पण ५, पृष्ठ ६६१.
३६. लघीयस्त्रय, कारिका ५४ विवृति.
३७. यह वाक्य आप्तपरीक्षा पृ. ४२, सिद्धिविनिश्चय टीका पृ. ३०६ ए, सन्मति टीका पृ. ५१०, स्याद्वाद रत्नाकर पृ. १०८८, प्रमाणमीमांसा पृ. ३४, शास्त्रवार्ता समुच्चय पृ. १५१ ए, अनेकान्तजयपताका पृ. २०७, धर्मसंग्रहणी पृ. १७६, बी, बोधिचर्यावतार पृ. ३९८, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक पृ. २१९, प्रमेयकमलमार्तण्ड पृ. ३५५, ५०२, स्याद्वादरत्नाकर पृ. ७६९, न्यायविनिश्चयविवरण पृ. १९ बी., स्याद्वाद मंजरी पृ. २०६ आदि में उद्धृत मिलता है ।
३८. लघीयस्त्रय, कारिका ५४ विवृति.
३९. न्यायविन्दुप्रकरण सटीकम् १/६ पृ. २९, सम्पादक-स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्धभारती, वाराणसी १९८५.
४०. लघीयस्त्रय, कारिका ६६-६७ विवृति.
४१. सन्मतितर्कप्रकरण भाग-२, गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर, संवत् १९८२, १/३, पृ. २७१.
(भोगीलाल लहेरचंद इन्स्टिट्यूट ओफ इन्डोलोजी में "जैन संस्कृत टीका साहित्य में उद्धरणों का अध्ययन" विषयक एक बृहद् योजना का कार्य प्रगति पर है । प्रस्तुत निबन्ध उक्त योजना का अंग है । इसमें योजना के उद्देश्य के अनुसार प्रारम्भिक प्रयास है ।)
- (लेखक महोदय ने सन्दर्भग्रन्थ की सूची नहीं दी है तथा समयाभाव के कारण हमने भी इस कमी की पूर्ति नहीं की । अतएव क्षमाप्रार्थी)

विनीत

सम्पादकद्वय